भाषा का विकास

उत्तर भारत (आर्य समूह की भाषा)
↓
संस्कृत
↓
प्रथम प्राकृत (पालि)
↓
द्वितीय प्राकृत (प्राकृत)
↓
तृतीय प्राकृत (अपभ्रंश)
↓
आधुनिक भाषाएँ
↓
असमिया, उड़िया, बांग्ला, हिन्दी, गुजराती, मराठी, पंजाबी
↓
अवधी, ब्रजभाषा, खड़ी बोली
↓
राजभाषा

■ **भाषा एवं साहित्य में संबंध**

भाषा अगर व्यक्त करने का माध्यम है, तो साहित्य भाव है। भाषा के माध्यम से ही भाव व्यक्त होता है अर्थात् भाषा अगर गाड़ी है, तो साहित्य सवारी।

■ **भाषा एवं लिपि में संबंध**

भाषा अगर ध्वनि है, तो लिपि उसका चित्रण। लिपि के बिना भाषा का अस्तित्व हो सकता है, परन्तु भाषा के बिना लिपि का नहीं। भाषा बोली जाती है, तो लिपि लिखी जाती है।

■ **भाषा के विकास की क्या स्थिति रही?**

उत्तर भारत की प्रमुख भाषाओं को आर्य भाषा के रूप में जाना जाता है। उत्तर भारत की प्राचीनतम आर्य भाषा संस्कृत भाषा थी। संस्कृत भाषा का आरम्भिक रूप वैदिक संस्कृत था। कहा जाता है कि भाषा का विकास समाज के विकास के समानान्तर होता है। उसी तरह, सामाजिक समन्वय के समानान्तर ही भाषायी समन्वय की प्रक्रिया चलती रहती है। अत: जब वैदिक आर्यों का गैर-आर्यों के साथ सम्पर्क हुआ, तो संस्कृत का ध्वनि शास्त्र भी प्रभावित हुआ तथा फिर वैदिक संस्कृत के समानान्तर लौकिक संस्कृत का विकास हुआ। फिर लगभग 4 सदी ईसा पूर्व एक प्रमुख विद्वान पाणिनी ने संस्कृत को व्याकरणबद्ध कर दिया। अत: यह एक मानक एवं अभिजात्य भाषा के रूप में स्थापित हो गयी। सामान्यत: ऐसा देखा जाता है कि व्याकरण का आधार मिलने के पश्चात् एक तरफ भाषा मानक भाषा का रूप ले लेती है, वहीं दूसरी तरफ उस भाषा का विकास अवरूद्ध होने लगता है क्योंकि जनसामान्य मानक भाषा से कटने लगते हैं। वस्तुत: जनसामान्य के लिए व्याकरण के नियमों का पालन करना कठिन होता है।

अत: जनसामान्य के बीच संस्कृत एक दुर्बोध भाषा बन चुकी थी। चूँकि इसमें 8 विभक्तियां तथा 3 वचन होते थे, जिस कारण प्रत्येक शब्द के 24 रूप बनते थे। यही कारण है कि जनसामान्य ने संस्कृत भाषा के समानान्तर एक अलग प्रकार की लोक भाषा विकसित कर ली, जिसे हम 'पालि' अथवा 'प्राकृत' के नाम से जानते हैं। समय के साथ प्राकृत के स्वरूप में भी परिवर्तन होता गया। इसमें विकास के 3 चरण देखने को मिलते हैं, जिसे प्रथम प्राकृत, द्वितीय प्राकृत तथा तृतीय प्राकृत का नाम दिया गया। प्रथम प्राकृत को 'पालि' के नाम से, द्वितीय प्राकृत को 'प्राकृत' के नाम से तथा तृतीय प्राकृत को 'अपभ्रंश' के नाम से जाना गया। एक के बाद दूसरे का विकास हुआ तथा इस विकास के क्रम में भाषा सरलीकरण की ओर उन्नमुख हुई अर्थात् विभक्तियां घिसकर टूटने लगीं तथा फिर उनकी जगह परसर्गों का प्रयोग आरम्भ हो गया। इसके परिणामस्वरूप जनसामान्य के लिए भाषा को बोलना और समझना आसान हो गया। फिर प्राकृत की विभिन्न अवस्थाओं के विकास के क्रम में इसका क्षेत्रीय स्वरूप भी विकसित होने लगा था। उदाहरण के लिए, शौरसेनी, अर्द्धमागधी आदि। किंतु प्रत्येक अवस्था में भाषा को व्याकरणबद्ध किया जाता रहा। उदाहरण के लिए, अपभ्रंश का विकास 8वीं सदी से आरम्भ हुआ था, फिर हेमचन्द नामक विद्वान ने इस भाषा को ही व्याकरणबद्ध कर दिया। अत: आगे इसी से हिन्दी का विकास हुआ। अपभ्रंश एक मध्यकालीन आर्य भाषा थी, किंतु हिन्दी एक आधुनिक आर्य भाषा बनकर आयी। इसके भी अलग-अलग क्षेत्रीय रूप थे, जिन्हें बोलियों के नाम से जाना गया। उदाहरण के लिए, अवधी, ब्रजभाषा, खड़ी बोली हिन्दी आदि।

■ **द्रविड़ समूह की भाषा**

द्रविड़ समूह की भाषा
↓
तमिल | कन्नड़ | तेलुगु | मलयालम

• **तमिल**- दक्षिण भारत में भाषाओं के द्रविड़ समूह का विकास देखा जा सकता है। प्राचीनतम द्रविड़ भाषा, तमिल भाषा थी। 200 ई.पू. यह भाषा अस्तित्व में आयी। सर्वप्रथम इसका प्रयोग गुफा अभिलेख के रूप में मिलता है। तत्पश्चात् यह संगम साहित्य के रूप में विकसित हुयी। फिर आगे लगभग सभी युगों में इसका विकास हुआ। इसका क्षेत्र तमिलनाडु एवं दक्षिण आंध्र-क्षेत्र था।

• **कन्नड़**- तमिल भाषा के पश्चात् दूसरी प्रमुख द्रविड़ भाषा के रूप में कन्नड़ का विकास हुआ। इसके आरम्भिक विकास

में जैन संतों का महत्वपूर्ण योगदान रहा। फिर इसमें राष्ट्रकूट शासकों ने भी अपना योगदान दिया। इसका मुख्य क्षेत्र कर्नाटक रहा था।

- **तेलुगु–** यह भाषा आंध्र क्षेत्र में विकसित हुई थी। विजयनगर काल में एक साहित्यिक भाषा के रूप में इसकी काफी प्रगति हुई।

- **मलयालम–** यह केरल प्रदेश की भाषा थी। 14वीं सदी तक इसका साहित्यिक भाषा के रूप में प्रचुर विकास देखने को मिलता है।

■ लिपि का विकास

भारत की प्राचीनतम लिपि सिंधु लिपि थी, किन्तु यह पढ़ी नहीं जा सकी। लगभग छठी सदी ई.पू. में ब्राह्मी लिपि का विकास हुआ। इसका सबसे आरंभिक साक्ष्य हमें अशोक के अभिलेखों में मिलता है। अशोक के अभिलेखों में हमें उत्तर भारत से दक्षिण भारत तक मुख्यत: ब्राह्मी लिपि का ही प्रयोग मिला है, परन्तु उत्तर-पश्चिम में अशोक के अभिलेखों में अरामाइक लिपि, खरोष्ठी लिपि एवं यूनानी लिपि, इन तीनों का भी प्रयोग हुआ है।

गुप्त काल तक आकर लिपि के रूप में 'कुटिलाक्षर' का विकास देखने को मिलता है। फिर लगभग 10वीं सदी तथा उसके पश्चात् देवनागरी लिपि का विकास हुआ तथा भारत की अनेक भाषाओं के लेखन में इसका प्रयोग शुरू हो गया।

■ साहित्य का विकास

- **वैदिक साहित्य (1500-600 ई.पू.):-**

वैदिक साहित्य
↓
- मंत्र
  ↓
  चार वेद
  - ऋग्वेद
  - सामवेद
  - यजुर्वेद
  - अथर्ववेद
- मंत्रों की व्याख्या
  ↓
  - मंत्रों की आनुष्ठानिक (यज्ञ) व्याख्या - ब्राह्मण
  - मंत्रों की रहस्यवादी व्याख्या - आरण्यक
  - आत्मा-ब्रह्म संबंध - उपनिषद्

वैदिक साहित्य को हम दो भागों में बाँट सकते हैं। प्रथम, भाग है मंत्र तथा दूसरा भाग है ब्राह्मण। मंत्र चार वेदों में संकलित हैं। ये वेद हैं- ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद। यजुर्वेद अनुष्ठान संबंधी वेद हैं, सामवेद संगीत पर पुस्तक है तथा अथर्ववेद औषधि शास्त्र से संबंधित है।

ब्राह्मण का अर्थ है- मंत्रों की व्याख्या। मंत्रों की व्याख्या भी तीन प्रकार से की गयी है। आनुष्ठानिक व्याख्या-ब्राह्मण, रहस्यवादी व्याख्या-आरण्यक (जंगल में तप द्वारा मोक्ष) तथा आत्मा-ब्रह्म संबंध-उपनिषदीय (ब्रह्म-जीव की एकता) व्याख्या।

- **बुद्धकालीन साहित्य:-**

बुद्धकालीन साहित्य
↓
- पालि/प्राकृत
  - राजकीय भाषा → अशोक के अभिलेख
  - बौद्ध ग्रंथ
    - सुत्तपिटक (बुद्ध की शिक्षा) → **पाँच निकाय-**
      - दीघ्घ निकाय
      - मज्झिम निकाय
      - संयुक्त निकाय
      - अंगुत्तर निकाय
      - खुद्दक निकाय- जातक कथा
    - विनयपिटक (संघ के नियम)
  - जैन ग्रंथ → 14 पर्व
- संस्कृत
  ↓
  छः वेदान्त
  - कल्प- गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र, श्रौतसूत्र
  - शिक्षा
  - निरूक्त- यास्क
  - व्याकरण- पाणिनी
  - छंद- पिंगल
  - ज्योतिष

संस्कृत साहित्य– इस काल में भी संस्कृत ग्रन्थों की रचना होती रही। संस्कृत में लिखे वैदिक साहित्य को श्रुति (देवताओं ने कहा-ऋषियों ने सुना) का नाम दिया गया था, वहीं इस काल के साहित्य को स्मृति साहित्य (इसमें बिना सुने स्मृति के आधार पर लिखा) के रूप में भी जाना गया। इसमें 6 वेदांग आते हैं, जो इस प्रकार हैं- कल्प सूत्र, शिक्षा, ज्योतिष, छंद, व्याकरण एवं निरूक्त। कल्प सूत्र को 3 भागों में बाँटा जाता है- श्रौत सूत्र, गृह्य एवं धर्म सूत्र। शुल्व सूत्र को भी श्रौत सूत्र से जोड़ा जाता है।

पालि साहित्य– चूँकि पालि भाषा जनभाषा थी, इसलिए महात्मा बुद्ध ने बौद्ध धर्म के प्रसार के लिए पालि का उपयोग किया। इस काल में त्रिपिटक (सुत्तपिटक, विनयपिटक अभिधम्मपिटक) का संकलन हुआ। सुत्तपिटक में बुद्ध की शिक्षा संकलित थी। विनयपिटक में संघ के नियम थे तथा अभिधम्मपिटक में बौद्ध दर्शन व्यक्त हुआ था। सुत्तपिटक में पाँच निकाय थे-

1. दीर्घ निकाय
2. मज्झिम निकाय
3. संयुक्त निकाय
4. अंगुत्तर निकाय
5. खुद्दक निकाय- धम्मपद, थेरगाथा (भिक्षु तथा भिक्षुणियों की कविताएं)

प्राकृत साहित्य– जैन धर्म से संबंधित साहित्य प्राकृत भाषा में संकलित हुआ।

- **मौर्य काल (400ई.पू.-200ई.पू.):-**

मौर्य कालीन साहित्य
- **पालि/प्राकृत**
  - अशोक के अभिलेख
  - बौद्ध ग्रंथ → अभिधम्म पिटक (बौद्ध दर्शन)
  - जैन ग्रंथ → 14 पर्व, 12 अंगों के द्वारा विस्थापित
- **संस्कृत**
  - कौटिल्य का अर्थशास्त्र
  - कात्यायन की वर्तिका

मौर्य काल में पालि/प्राकृत भाषा का महत्व बढ़ गया। यही वजह है कि इसने राजभाषा का दर्जा प्राप्त कर लिया। अशोक के अभिलेख प्राकृत भाषा में ही लिखे गये, उसी प्रकार पालि/प्राकृत भाषा में ही बौद्ध एवं जैन साहित्य का संकलन हुआ। त्रिपिटक में तीसरे पिटक या अभिधम्म पिटक की रचना पालि भाषा में इसी काल में हुई। पालि में एक ग्रंथ महावस्तु भी लिखा गया। उसी प्रकार, जैन साहित्य प्राकृत में लिखा गया। आरंभिक जैन साहित्य 14 वर्ण में विभाजित था जिसे आगे 12 अंगों के द्वारा विस्थापित किया गया।

इसका अर्थ यह नहीं है कि संस्कृत ग्रंथों का संकलन बंद हो गया, अपितु संस्कृत का संकलन भी चलता रहा। उदाहरण के लिए, कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अधिकांश भाग का संकलन इसी काल में हुआ। इसके अतिरिक्त कात्यायन की वर्तिका भी इसी काल में संकलित हुई।

- **मौर्योत्तर काल (200ई.पू.-300ई.):-**

मौर्योत्तर कालीन साहित्य

उत्तर भारत
- संस्कृत की प्रगति
  - ब्राह्मण साहित्य
    - पुराण
    - मनुसंहिता
    - रामायण एवं महाभारत के अधिकांश भाग का संकलन
  - बौद्ध साहित्य (महायान बौद्ध पंथ)
    - अवदानों की रचना
    - ललितविस्तर
    - लंकावतार सूत्र
    - अश्वघोष की बुद्धचरित एवं सौन्दरानंद
- प्राकृत/पालि
  - बौद्ध ग्रंथ → मिलिन्दपन्हों (एकमात्र महायान बौद्ध से संबंधित ग्रंथ, जो पालि में लिखित)
  - सातवाहन दरबार में लिखित ग्रंथ → गाथा-सप्तशती

संस्कृत- इस काल में राजदरबारों में संस्कृत का महत्व बढ़ने लगा था। यह प्रक्रिया रूद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख से आरम्भ हुई थी। जूनागढ़ अभिलेख को भारत में संस्कृत में सबसे बड़ा अभिलेख माना जाता है। वस्तुत: इस काल में भारत में शक एवं कुषाण जैसे कुछ विदेशी राजवंश स्थापित हुए थे। उसी प्रकार, सातवाहन जैसे कुछ जनजातीय मूलवंश के राजवंश भी स्थापित थे। अत: ऐसे राजवंशों को भारतीय समाज में वैधता प्राप्त करने की जरूरत थी। इस कारण से उन्होंने ब्राह्मण पंथ एवं संस्कृत को संरक्षण दिया।

फिर वही काल था जब बौद्ध धर्म के स्वरूप में भी परिवर्तन आ चुका था तथा हीनयान शाखा के समानान्तर महायान शाखा का विकास हुआ था। महायान शाखा ने पालि भाषा को छोड़कर संस्कृत भाषा को अपना लिया। इसलिए जहाँ हीनयान साहित्य पालि भाषा में मिलता है, वहीं महायान साहित्य संस्कृत भाषा में। अत: जिस प्रकार पालि भाषा में बुद्ध के जन्म से संबंधित जातक कथाएं लिखी गयी थीं, उसी प्रकार इस काल में महायान साहित्य में बुद्ध के जीवन से संबंधित अवदान लिखे गये। उसी प्रकार अश्वघोष तथा अन्य विद्वानों की कृतियां भी संस्कृत में लिखी गईं। अश्वघोष द्वारा लिखित महत्वपूर्ण ग्रन्थ बुद्धचरित्र तथा सौन्दरानन्द हैं।

पालि/प्राकृत- जनसामान्य में पालि/प्राकृत का प्रचलन बना रहा। फिर महायान शाखा से संबंधित एक मात्र ग्रन्थ ऐसा मिलता है जो पालि में लिखा गया है, वह ग्रन्थ है मिलिन्दपन्हों। उसी प्रकार, सातवाहन दरबार में प्राकृत को भी संरक्षण मिला। उदाहरण के लिए, सातवाहन शासक हाल ने छद्म नाम से गाथासप्तशती नामक ग्रन्थ प्राकृत में लिखा।

दक्षिण भारत

आरंभिक तमिल साहित्य (संगम साहित्य)

तृतीय संगम की रचना-
- मेलकन्कु - 18 ग्रंथ
- किलकन्कु - 18 लघु ग्रंथ
- महाकाव्य - शिल्पादिकारम् एवं मणिमेखलई

तमिल साहित्य- तमिल साहित्य का आरम्भिक रूप संगम साहित्य के रूप में व्यक्त हुआ है। 'संगम' का शाब्दिक अर्थ होता है-कवियों का सम्मेलन। एक तमिल मिथक के अनुसार मदुरई एवं आस-पास के क्षेत्र में कवियों के तीन सम्मेलन हुए। बताया जाता है कि प्रथम सम्मेलन में केवल देवताओं और ऋषियों ने भाग लिया था तथा इसमें बहुत सी रचनाएं लिखी गयी थीं, किन्तु एक समुद्री तूफान के कारण सभी रचनाएं नष्ट हो गयीं। फिर दूसरे सम्मेलन मे भी देवताओं और ऋषियों ने ही

भाग लिया था तथा इसमें भी बहुत सी रचनाएं संकलित की गईं, किन्तु ये भी नष्ट हो गयीं तथा एकमात्र रचना बच गयी और वह रचना थी तोल्कापियम, जो एक तमिल व्याकरण ग्रंथ था। फिर तीसरे संगम का आयोजन हुआ, इस संगम में एट्टुत्तोकई (8 ग्रंथ) का संकलन हुआ। इसके अलावा 10 ग्राम्यगीत लिखे गये जो पत्तुपत्तु नामक ग्रंथ में संकलित हैं।

अगर हम संगम साहित्य का विश्लेषण करते हैं, तो हमें इसमें विकास के कई चरण नजर आते हैं–

1. मेलकन्कु साहित्य (आख्यानात्मक साहित्य)– तृतीय संगम में संकलित 8 ग्रन्थ तथा 10 ग्राम्यगीत मेलकन्कु साहित्य के अन्र्तगत आते हैं। यह साहित्य प्रेम एवं राजा की प्रशस्ति से संबंधित साहित्य था।

2. किलकन्कु साहित्य (उपदेशात्मक साहित्य)– इस समूह में 18 लघु ग्रन्थ आते हैं, जिनमें तिरूकुरल एवं नालदियार प्रमुख हैं। इन ग्रन्थों पर जैन दृष्टिकोण का प्रभाव है तथा ये आख्यानात्मक से उपदेशात्मक हो गये। इस तरह मेलकन्कु की तुलना में किलकन्कु पर उत्तर का प्रभाव अधिक दिखता है।

3. महाकाव्य– शिल्पादिकारम तथा मणिमेखलई महाकाव्यों पर उत्तर का प्रभाव सबसे अधिक दिखता है क्योंकि तमिल लोग छोटी–छोटी कविताएं लिखते थे। अगर उन्होंने महाकाव्य लिखा, तो उत्तर के महाभारत एवं रामायण के प्रभाव में। फिर इन महाकाव्यों पर बौद्ध प्रभाव स्पष्ट है तथा ये निर्वाण के सन्दर्भ में सोचते हैं।

वैसे तो तमिल मिथक के अनुसार, संगम ग्रन्थों का संकलन बहुत पहले हुआ, किन्तु नवीन शोधों से यह ज्ञात होता है कि इन ग्रन्थों का संकलन ईसा की प्रथम सहस्त्राब्दी ई. में हुआ। वस्तुतः संगम ग्रन्थ दक्षिण भारत के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक जीवन को जानने के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। इनसे हमें ज्ञात होता है कि दक्षिण में चोल, चेर और पांड्य राजवंश स्थापित थे तथा इनके बीच निरंतर संघर्ष होता था। आर्थिक क्षेत्र में ये रोमन व्यापार की सूचना देते हैं। उसी प्रकार, सामाजिक क्षेत्र में ये दक्षिण के समाज पर उत्तर के प्रभाव को दर्शाते हैं तथा हमें सूचित करते हैं कि वर्ण व्यवस्था तथा महिलाओं की निम्न अवस्था उत्तर की तरह दक्षिण के समाज में भी व्याप्त हो रही थी। इसके अतिरिक्त, संगम साहित्य से हमें धर्म के क्षेत्र में उत्तर तथा दक्षिण के बीच होने वाले समन्वय की भी सूचना मिलती है। उत्तर एवं दक्षिण के देवताओं और देवियों के बीच भी एकीकरण देखने को मिलता है। उदाहरण के लिए, दक्षिण के एक देवता मुरुगन का संबंध उत्तर के एक देवता कुमार कार्तिकेय से किया जाता है। उसी प्रकार, दक्षिण की एक देवी कोर्रवई का एकीकरण उत्तर की एक देवी दुर्गा से किया जाता है।

प्रश्नः दक्षिण भारत के राजनीतिक इतिहास की दृष्टि से अधिक उपयोगी न होते हुए भी संगम साहित्य उस समय की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का अत्यंत प्रभावी शैली में वर्णन करता है। टिप्पणी कीजिए (200 शब्द, UPSC-2013)

उत्तरः– तमिल परंपरा में तमिल विद्वानों के तीन सम्मेलनों का जिक्र मिलता है। इन सम्मेलनों को संगम कहा गया है तथा इनमें लिखित साहित्य को संगम साहित्य, किंतु वास्तविक रूप में इस साहित्य की रचना ईसा की आरंभिक शताब्दियों में हुई। वस्तुतः प्रभावी अध्ययन सामग्री की अनुपस्थिति में संगम साहित्य सुदूर दक्षिण के इतिहास जानने का प्रमुख स्रोत है। यद्यपि राजनीतिक इतिहास की तुलना में यह सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास पर बेहतर प्रकाश डालता है।

संगम साहित्य चोल, चेर एवं पांड्य राजवंश की सूचना देता है। संगम साहित्य के माध्यम से इन राजवंशों की वंशावली ज्ञात होती है। किंतु वंशावलियों के विवरण में प्रामाणिकता का अभाव दिखता है तथा कुछ शासकों के द्वारा किए गए दावे भी अतिशयोक्तिपूर्ण प्रतीत होते हैं। उदाहरण के लिए, एक चेर वंश के शासक ने उत्तर में हिमालय पहाड़ तक के क्षेत्र को जीत लेने का दावा किया है। इसलिए राजनीतिक इतिहास के अध्ययन स्रोत के रूप में इस विवरण का महत्व कम हो जाता है।

वहीं संगम साहित्य के विवरण से सामाजिक इतिहास का बेहतर ज्ञान मिलता है। आरंभिक संगम साहित्य, एट्टुत्तोकई, से हमें यह सूचना मिलती है कि जिस प्रकार उत्तर का समाज चतुर्वर्ण व्यवस्था पर आधारित था, उसी प्रकार दक्षिण का समाज कुट्टी प्रथा पर। फिर उत्तर तथा दक्षिण के समाज के बीच निरन्तर संवाद जारी रहा था। माना जाता है कि उत्तर भारत के मॉडल पर दक्षिण भारत में भी चतुर्वर्ण व्यवस्था को अपनाने का प्रयास किया गया था, यद्यपि यह व्यवस्था दक्षिण के समाज में पूरी तरह लागू नहीं हो पायी। फिर हमें संगम साहित्य से यह भी ज्ञान मिलता है कि उत्तर भारत की तरह इस काल में सुदूर दक्षिण में भी महिलाओं की हीन अवस्था थी।

अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में भी संगम साहित्य हमें प्रभावी सूचना प्रदान करता है। संगम साहित्य में अर्थव्यवस्था को पाँच क्षेत्रों (तिनै) में बाँटा गया है तथा उन्हीं के आधार पर विभिन्न पेशों का निर्धारण किया गया है। सबसे बढ़कर संगम साहित्य से रोमन व्यापार की प्रभावशाली सूचना प्राप्त होती है। इससे ईसा की आरंभिक शताब्दियों में रोम के साथ किए जाने वाले व्यापार में आयात एवं निर्यात की विस्तृत सूची भी प्राप्त होती है। साथ ही संगम साहित्य से हमें यह भी ज्ञान मिलता है कि

संगमकालीन अर्थव्यवस्था नगरीकरण तक पहुँच गयी थी।

इस प्रकार संगम साहित्य सुदूर दक्षिण के, विशेषकर सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास जानने का महत्वपूर्ण स्रोत है।

- **गुप्तकालीन साहित्य (300ई.-600ई.):-**
- गुप्तकाल को 'स्वर्णकाल' की संज्ञा से विभूषित किया जाता है। इसकी इस उपमा की पुष्टि इस काल के कला और साहित्य से होती है। गुप्त साम्राज्य की स्थापना के साथ ही संस्कृत भाषा की उन्नति को बल मिला तथा यह राजभाषा के पद पर आसीन हुई। इस काल के साहित्य को मुख्य रूप से दो रूपों में विभक्त किया जा सकता है- (i) धार्मिक साहित्य तथा (ii) लौकिक साहित्य।
- **धार्मिक साहित्य :** गुप्त काल के दौरान धार्मिक साहित्य में विविध पुराणों का संकलन हुआ। साथ ही रामायण तथा महाभारत का अंतिम रूप से संकलन भी इसी समय हुआ। इसके अलावा गीता, याज्ञवल्क्य स्मृति, नारद स्मृति तथा बृहस्पति स्मृति आदि की रचना भी इसी समय हुई।
- **लौकिक साहित्य :** इस काल में धार्मिक साहित्य के अलावा मानव जीवन के विविध पक्षों से जुड़ी रचनाओं को भी देखा जा सकता है। इस श्रेणी में कालिदास की रचनाओं का प्रमुख स्थान है। सात ग्रन्थों के प्रणयन का श्रेय कालिदास को दिया जाता है-रघुवंश, कुमारसंभव, मेघदूत, ऋतुसंहार, मालविकाग्निमित्रम्, विक्रमोर्वशीयम् तथा अभिज्ञानशांकुतलम्। 'रघुवंश' 19 सर्गों का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है जिसमें राम के पूर्वजों का वर्णन, उनका गुणगान तथा उनके वंशजों का चित्रण हुआ है। कुमारसंभव में 17 सर्ग हैं जिनमें प्रकृति चित्रण तथा कार्तिकेय जन्म की कथा वर्णित है। ऋतुसंहार में 'षड्ऋतु वर्णन' तथा मेघदूत में विरही यक्ष एवं उसकी प्रियतमा का वियोग वर्णन चित्रित है। मालविकाग्निमित्रम् पाँच अंकों का नाटक है जिसमें मालविका और अग्निमित्र की प्रणय कथा वर्णित है। विक्रमोर्वशीयम् में उर्वशी तथा पुरूरवा की प्रणय कथा है। अभिज्ञानशाकुंतलम् में हस्तिनापुर के राजा दुष्यंत तथा शकुन्तला के प्रणय, वियोग एवं पुनर्मिलन की कथा वर्णित है।
- कालिदास के अतिरिक्त इस समय के कुछ अन्य विद्वानों की रचनाएँ भी महत्वपूर्ण हैं, इनमें विशाखदत्त की मुद्राराक्षस तथा देवीचन्द्रगुप्तम्, शूद्रक का मृच्छकटिकम् तथा भारवि का किरातार्जुनीयम् आदि प्रसिद्ध हैं। साहित्य के अलावा, इस समय गणित, चिकित्सा तथा ज्योतिष आदि से संबंधित ग्रंथों का भी संकलन किया गया। जैसे- चन्द्रगोमिन द्वारा रचित चन्द्रव्याकरण, विष्णु शर्मा कृत पंचतंत्र (नीति वचन), कामंदक की नीतिसार, आर्यभट्ट कृत आर्यभट्टीयम् (गणित), वराहमिहिर कृत पंचसिद्धांतिका (ज्योतिष), वाग्भट्ट की आष्टांगहृदय तथा अष्टांगसंग्रह (चिकित्सा), पालकप्य की हस्त्यायुर्वेद (पशु चिकित्सा) तथा अमरसिंह द्वारा रचित अमरकोष अथवा नाम-लिंगानुशासन (शब्दकोष) आदि।
- **पालि/प्राकृत :** हालाँकि, राजदरबार में संस्कृत को संरक्षण मिला, किंतु जनसामान्य के बीच प्राकृत का प्रचलन बना रहा तथा लोकभाषा के रूप में यह महत्वपूर्ण बनी रही। यहाँ तक कि गुप्तयुगीन संस्कृत साहित्य के ग्रंथों में भी महिलाएँ तथा शूद्र प्राकृत भाषा बोलते थे।
- **गुप्तोत्तरकालीन साहित्य**
- **उत्तर भारत :** गुप्तों के पतन के पश्चात् उत्तर भारत में हर्ष के अधीन एक मजबूत साम्राज्य कायम किया गया। हर्ष के शासन काल में शिक्षा एवं साहित्य की उन्नति को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला। हर्ष के दरबार में भी संस्कृत को संरक्षण प्राप्त हुआ। स्वयं हर्ष ने संस्कृत में तीन नाटकों-रत्नावली, प्रियदर्शिका तथा नागानन्द की रचना की। वहीं उसके दरबारी लेखक बाणभट्ट को हर्षचरित तथा कादम्बरी नामक ग्रन्थ लिखने का श्रेय दिया जाता है। एक अन्य विद्वान मयूर ने 100 श्लोकों का संग्रह 'मयूरशतक' लिखा।
- **प्राकृत :** गुप्तोत्तर काल में संस्कृत की साहित्यिक रचनाओं के साथ ही जनभाषा प्राकृत में भी साहित्यिक रचनाएँ होने लगीं। इनमें स्वयंभू कृत पउमचरिउ जैसे महाकाव्य विशेष उल्लेखनीय हैं। संस्कृत के विपरीत लोगों की बोलचाल की भाषा प्राकृत के कई रूप थे, जो भौगोलिक तथा क्षेत्रीय तत्वों पर आधारित थे।
- **दक्षिण भारत :** इसी समय दक्षिण भारत में चालुक्यों तथा पल्लवों के अधीन भी साहित्य के क्षेत्र में विशेष योगदान दिया गया। हुएनसांग चालुक्य राज्य के लोगों को विद्या का व्यसनी बताता है। चालुक्य लेखों में संस्कृत भाषा का प्रयोग मिलता है और यह उसके अत्यधिक विकसित स्वरूप को प्रकट करता है। महाकूट तथा एहोल के लेख क्रमशः अलंकृत गद्य एवं पद्य के विकसित होने का प्रमाण हैं। पुलकेशिन द्वितीय के सामंत गंगराज दुर्वीनीत ने 'शब्दावतार' नामक व्याकरण ग्रंथ की रचना की। इसी समय उदयदेव ने जैनेन्द्र-व्याकरण तथा सोमदेवसूरि ने यशस्तिकल्पचम्पू तथा 'नीतिवाक्यामृत' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थों का प्रणयन किया। पल्लव नरेशों का शासन काल संस्कृत तथा तमिल दोनों ही भाषाओं के साहित्य की उन्नति का काल रहा। पल्लव शासक महेन्द्रवर्मन स्वयं एक बड़ा विद्वान था तथा उसने मत्तविलासप्रहसन एवं भगवदज्जुक नामक ग्रंथों की

रचना की। पल्लवों के दरबार में ही दण्डी ने दशकुमारचरित एवं काव्यादर्श की रचना की। इस काल में अलवार तथा नयनार संतों द्वारा तमिल भाषा-साहित्य को प्रोत्साहन दिया गया।

- **पूर्व-मध्यकालीन साहित्य**
- हर्ष के पतन के उपरांत उत्तर भारत में क्षेत्रीय राज्यों का स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। इसे 'राजपूत काल' के नाम से भी जाना जाता है। राजपूत शासकों द्वारा संस्कृत साहित्य को प्रोत्साहन दिया गया। साथ ही साथ इस समय अपभ्रंश तथा हिन्दी भाषा को भी प्रोत्साहन मिला। इस समय कुछ राजपूत नरेश स्वयं उच्चकोटि के विद्वान थे। इनमें परमारवंशी मुञ्ज तथा भोज का विशेष उल्लेख किया जा सकता है। मुञ्ज एक उच्चकोटि का कवि था, उसकी राजसभा में 'नवसाहसांकचरित' के रचयिता पद्मगुप्त तथा 'दशरूपक' के रचनाकार धनञ्जय निवास करते थे। भोज की विद्वता तथा काव्य-प्रतिभा लोक विख्यात है। उसने स्वयं चिकित्सा, ज्योतिष, व्याकरण, वास्तुकला आदि विविध विषयों पर अनेक ग्रंथ लिखे थे। इनमें श्रृंगारप्रकाश, सरस्वती कण्ठाभरण, कूर्मशतक, समरांगणसूत्रधार, युक्तिकल्पतरू तथा शब्दानुशासन आदि उल्लेखनीय हैं। संस्कृत साहित्य की प्रमुख रचनाओं में राजशेखर की काव्य-मीमांसा, बालरामायण, विद्धशालभञ्जिका, श्रीहर्ष का नैषधचरित, जयदेव का गीतगोविन्द, विल्हण का विक्रमांङ्कदेवचरित, सोमदेव का कथासरित्सागर तथा कल्हण की राजतरंगिणी आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।
- **लोक भाषा साहित्य :** संस्कृत के अतिरिक्त इस काल के शासकों द्वारा अपभ्रंश और हिंदी साहित्य को भी प्रोत्साहन दिया गया। वस्तुतः इस काल में अनेक 'रासो काव्य' लिखे गए। जैसे- परमाल रासो, वीसलदेव रासो तथा पृथ्वीराज रासो। इसी समय अपभ्रंश से आरम्भिक हिन्दी साहित्य का विकास भी होता है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रमुख रचनाओं में पश्चिमी चालुक्य नरेश सोमेश्वर कृत मानसोल्लास, लक्ष्मीधर का कृत्यकल्पतरू, विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा तथा जीमूतवाहन के दायभाग का उल्लेख किया जा सकता है।

द्रविड़ साहित्य

- द्रविड़ भाषा समूह में तमिल, कन्नड़, तेलुगु और मलयालम भाषाएँ हैं। पूर्वमध्यकाल में दक्षिण भारत में चोल शासकों तथा नयनार और अलवार संतों ने इन भाषाओं के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। शैव समयाचार्यों के तेवरम तथा तिरूवाचकम और वैष्णव अलवारों के नालायिरप्रबंधम् हिंदू मध्यकालीन भारत के तमिल साहित्य के सबसे बड़े तत्व हैं। कम्बन, ओट्टकुट्टन और पुगलेंदी इस काल के तीन तमिल रत्न माने जाते हैं जिन्होंने तमिल साहित्य की बहुत श्रीवृद्धि की। इनमें से कम्बन, तमिल भाषा में लिखी अपनी रामायण के कारण प्रसिद्ध हैं।
- इस काल में दक्षिण भारत में कन्नड़ भाषा साहित्य का भी व्यापक विकास देखा गया। इस भाषा में सबसे पुरानी कृति वोड्ड-आराधना मानी जाती है, यह एक जैन शिवकोट्याचार्य की लिखी हुई है, जो बहुत संभवतः ईसा की आठवीं शताब्दी से पहले हुआ था। कविराजमार्ग की रचना प्रसिद्ध राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष ने 850 ई. के आस-पास की थी। दसवीं शताब्दी के तीन रत्न-पंप, पोन्ना तथा रन्ना कन्नड़ साहित्य में अपने योगदान के लिए प्रसिद्ध हैं। पंप का आदिपुराण प्रथम तीर्थंकर का इतिहास है। पंप का विक्रमांकविजय और रन्ना का साहस भीम विजय, दोनों महाभारत पर आधारित लौकिक काव्य हैं।
- तेलुगु और मलयालम का साहित्य बहुत पुराना नहीं है। तेलुगु लेखकों की अब तक बची हुई पूर्वतम् रचनाएँ बारहवीं शताब्दी की हैं, वहीं मलयालम का श्रेय युग सत्रहवीं शताब्दी में तुंजतु ऐरोच्छन से शुरू होता है।

प्रश्न- धार्मिक सद्भाव प्राचीन कालीन भारतीय संस्कृति के मूल भाव में निहित है। परीक्षण कीजिए।

उत्तर- धर्म एवं विश्वास की स्वतंत्रता भारतीय संस्कृति का प्राणतत्व रहा है। प्राचीन काल के भारतीयों ने धर्म एवं विचार के क्षेत्र में जिस प्रकार की स्वतंत्रता का उपभोग किया, वह समकालीन विश्व में दुर्लभ था। प्राचीन काल में भारतीय धर्म एवं दर्शन की निम्नलिखित विशेषताएँ अंकित की जा सकती हैं-

1. **धार्मिक पंथों की विविधता-** चूँकि लोगों एवं विचारकों को अपने धर्म के चयन में स्वतंत्रता रही। इसलिए किसी एक धार्मिक पंथ का एकाधिकार स्थापित नहीं हुआ, जैसा कि हम समकालीन यूरोप तथा पश्चिम एशिया में देखते हैं। यहाँ ब्राह्मण, बौद्ध, जैन, आजीवक, तंत्रवादी, भक्ति के प्रतिपादक, सभी समानान्तर रूप में सक्रिय रहे।
2. अधिकांश धार्मिक पंथों का बल अहिंसा पर रहा था।
3. कर्म एवं पुनर्जन्म की अवधारणा- इस अवधारणा ने लोगों में धैर्य एवं सहनशीलता को प्रोत्साहन दिया।
4. विभिन्न धार्मिक पथों के बीच एकता का भाव- इनके बीच विचारों का आदान-प्रदान होता रहा। बुद्ध विष्णु के अवतार घोषित किए गए, वहीं 'हरिहर' की अवधारणा विष्णु एवं शिव को परस्पर जोड़ती थी।
5. धार्मिक विचारों की स्वतंत्रता- भारत में किसी भी धर्म

प्रवर्तक को सुकरात अथवा ईसा मसीह की तरह अपने विचारों के लिए प्राण नहीं गँवाने पड़े। इसलिए अमर्त्यसेन ने प्राचीन बुद्धिजीवियों को 'Argumentative Indians' का नाम दिया है।

6. विभिन्न राजवंशों के द्वारा एक से अधिक धार्मिक पंथों को संरक्षण प्रदान किया जाता था, जबकि समकालीन यूरोप में रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट के नाम पर रक्त बहाया जा रहा था।

इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि धार्मिक सौहार्द्र एवं समरसता की भावना प्राचीन भारतीय धर्म एवं दर्शन में ही निहित है।

प्राचीन शिक्षा

उपनिषद् ने ज्ञान को परिभाषित करते हुए घोषित किया है 'सा विद्या या विमुक्त्ये'। इसका अर्थ है कि ज्ञान वह होता है जो लोगों को मुक्ति देता है, यह प्रकाश एवं शक्ति का स्रोत है। किंतु अगर हम प्राचीनकालीन शिक्षा पद्धति पर दृष्टिपात करते हैं, तो फिर हमें मिचेल फूको की यह युक्ति याद आती है 'The knowledge is power'। प्राचीनकालीन चिंतकों ने भी यह घोषित किया है 'बुद्धिर्यस्या बलमतस्या' अर्थात् जिसके पास बुद्धि है, उसके पास बल है।

किंतु प्राचीनकाल में शिक्षा के विकास में विभिन्न धार्मिक पंथों का योगदान रहा था, उसी आधार पर शिक्षा के स्वरूप तथा शिक्षा के आवंटन की पद्धति में भी अंतर रहा।

प्राचीन शिक्षा

- ब्राह्मणवादी शिक्षण पद्धति
- बौद्ध शिक्षा केन्द्र
- जैन शिक्षा केन्द्र

■ ब्राह्मणवादी शिक्षण संस्थान

ब्राह्मण शिक्षा के अंतर्गत ग्रन्थों एवं दर्शन के अध्ययन पर विशेष बल दिया गया। इस शिक्षा प्रणाली का मुख्य बल सैद्धान्तिक शिक्षा पर रहा। सबसे बढ़कर ब्राह्मण शिक्षा प्रणाली में महिलाओं तथा शूद्रों के साथ भेदभाव किया गया। इस काल में विभिन्न प्रकार के शिक्षण संस्थान प्रचलन में थे-

ब्राह्मणवादी शिक्षण संस्थान

- गुरूकुल
- घटिका
- शैक्षणिक संगोष्ठी
- ब्रह्मपुरी
- महाविद्यालय
- अग्रहार

• **गुरूकुल**- ब्राह्मण आचार्यों के द्वारा गुरूकुल स्थापित किए जाते थे तथा इस प्रकार के गुरूकुल आम-आबादी से पृथक् एकांत अथवा जंगल में होते थे। गुरूकुल में कुलीनों और सवर्णे को शिक्षा दी जाती थी। इसमें वेद, उपनिषद् तथा दर्शन का अध्ययन कराया जाता था तथा छात्रों के नैतिक एवं बौद्धिक उत्थान पर बल दिया जाता था।

• **शैक्षणिक संगोष्ठी**- समय-समय पर राजाओं तथा विद्वानों के द्वारा शैक्षणिक सभाओं का भी आयोजन किया जाता था तथा इसमें दूरस्थ क्षेत्रों से विद्वानों को आमंत्रित किया जाता था। इसका वास्तविक उद्देश्य था- उच्च शिक्षा का प्रसार। इसी प्रकार की एक संगोष्ठी में ऋषि याज्ञवल्क्य तथा गार्गी के बीच एक वाद-विवाद हुआ था। बताया जाता है कि इस संगोष्ठी में विजयी होने के बाद विदेह माधव ने ऋषि याज्ञवल्क्य को 1000 गायें दान में दी थीं, जिसमें प्रत्येक गाय के सींगों पर दो सोने के पाद बंधे हुए थे।

• **ब्राह्मण महाविद्यालय**- ऐसा माना जाता है कि लगभग 400 ई.पू. में ब्राह्मण शिक्षा केंद्र के रूप में तक्षशिला का विकास हो गया था। इस महाविद्यालय से भारत के अनेक विद्वानों ने शिक्षा प्राप्त की थी। उदाहरण के लिए, प्रमुख राजवैद्य जीवक, प्रमुख आचार्य चाणक्य, प्रमुख विद्वान तथा वैयाकरण कात्यायन, सभी तक्षशिला महाविद्यालय से जुड़ रहे थे। फिर तक्षशिक्षा का एक महत्वपूर्ण जुड़ाव भारत के बाहर के क्षेत्र से भी संभव था। किंतु आधुनिक संदर्भ में यह नालंदा विश्वविद्यालय की तरह एक विश्वविद्यालय का दर्जा प्राप्त नहीं कर सका तथा 5वीं सदी में हूणों के आक्रमण के पश्चात् इसका पतन हो गया।

जब हम इसके कारणों का परीक्षण करते हैं, तो फिर तक्षशिला एवं नालंदा विश्वविद्यालय के बीच अंतर का एक प्रमुख बिंदु नजर आता है- एक का ब्राह्मण शिक्षा केंद्र के रूप में स्थापित होना, तो दूसरे का बौद्ध शिक्षा केंद्र के रूप में। जैसा कि हम जानते हैं कि बौद्ध धर्म एक विश्व धर्म था, इसलिए नालंदा विश्वविद्यालय को विश्वविद्यालय का दर्जा पाने में आसानी हुई। इसके अतरिक्त, दोनों में अंतर के कुछ अन्य बिंदु भी मौजूद थे। उदाहरण के लिए, नालंदा विश्वविद्यालय में एक अनुशासित तथा स्पष्ट पाठ्यक्रम लागू किया गया था, जबकि तक्षशिला महाविद्यालय में कोई पाठयक्रम स्पष्ट नहीं था और न ही पाठ्यक्रम को समाप्त करने की कोई निश्चित कालावधि होती थी, अपितु शिक्षक अपनी निजी सोच एवं अनुभव के आधार पर छात्रों को अलग-अलग समूह बनाकर शिक्षा देते थे। दूसरे शब्दों में, छात्र सामूहिक रूप में महाविद्यालय के छात्र न होकर निजी तौर पर किसी शिक्षक विशेष के छात्र होते थे।

• **शिक्षा के केंद्र के रूप में घटिका (मंदिर)**- पूर्व मध्य काल तक शिक्षा के केंद्र के रूप में मंदिर अथवा घटिका का विकास हो चुका था।

• **शिक्षा के केंद्र के रूप में अग्रहार एवं ब्रह्मदेय (ब्रह्मपुरी)**- प्राचीन काल में शिक्षा के विकास में अग्रहार तथा ब्रह्मदेय का भी योगदान रहा। अग्रहार के अंतर्गत भूमि अनुदान

ब्राह्मणों के समूह को दिया जाता था तथा यह ब्राह्मणों के जिस समूह को दिया जाता था, उससे यह अपेक्षा की जाती थी कि वह लोगों के लिए मुफ्त शिक्षा का प्रबंधन करे। वैसे गाँव, जहाँ पूरा का पूरा गाँव ब्राह्मण बस्ती होता था, अग्रहार कहलाते थे। दूसरी तरफ वैसे गाँव, जिसके एक भाग में ब्राह्मणों की बस्ती होती थी, ब्रह्मदेय कहलाते थे। अग्रहार की तरह ब्रह्मदेय भी शिक्षा के प्रसार के लिए कार्य करते थे।

- **ब्राह्मणवादी शिक्षा के पाठ्यक्रम**- प्राचीन काल में शिक्षा का मुख्य पाठ्यक्रम वैदिक साहित्य के अध्ययन के साथ-साथ धर्म एवं दर्शन, तर्कशास्त्र, गणित, नीतिशास्त्र, महाकाव्य, व्याकरण, खगोलविद्या, मूर्तिकला, वैद्यक, पोतनिर्माण आदि की शिक्षा पर बल दिया जाता था। इस प्रकार, धार्मिक एवं लौकिक विषयों की शिक्षा में समन्वय स्थापित किया गया। इस युग के स्नातकों से अपेक्षा की जाती थी कि वे वेदों तथा 18 शिल्पों में निपुण हों।

- **सीमाएँ**- यह शिक्षा पद्धति विषमतामूलक एवं भेदभावपूर्ण थी। जहाँ निम्न जाति के लोगों को यह शिक्षा उपलब्ध नहीं थी, वहीं महिलाओं के साथ भेदभाव पूर्ण व्यवहार किया जाता था।

■ बौद्ध एवं जैन शिक्षा केंद्र

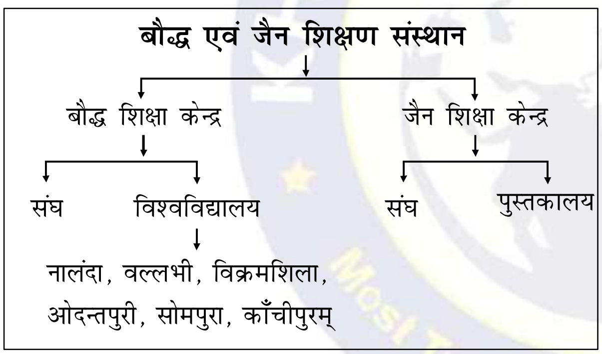

ब्राह्मण शिक्षा केंद्र के समानान्तर बौद्ध एवं जैन शिक्षा केंद्र का भी विकास हुआ। कई बातों में इन शिक्षा केंद्रों का स्वरूप अलग था। प्रथम, बौद्ध एवं जैन शिक्षा बौद्ध संघों के द्वारा प्रदान की जाती थी तथा ये संघ बस्तियों के निकट होते थे, ब्राह्मण शिक्षा केंद्र की तरह जंगल अथवा एकांत में नहीं। साथ ही, लोक भाषा पालि एवं प्राकृत के प्रयोग के कारण इन संघों का जन-सामान्य से बेहतर जुड़ाव होता था। दूसरे, बौद्ध एवं जैन शिक्षा केंद्रों ने शूद्रों और महिलाओं के लिए भी शिक्षा की सुविधाएं उपलब्ध कराईं। तीसरे, ब्राह्मण शिक्षा का बल मुख्यतः सैद्धान्तिक शिक्षा पर रहा था, किंतु बौद्ध एवं जैन शिक्षण संस्थानों में व्यावहारिक शिक्षा अर्थात् शिल्प कला के ज्ञान पर भी बल दिया गया। वस्तुतः इन शिक्षण संस्थानों में 18 शिल्प एवं 64 कलाओं की शिक्षा दी जाती थी।

- **शिक्षण संस्थानों के विभिन्न प्रकार**-

1. शिक्षा के केंद्र के रूप में संघ- संघ ने बौद्ध एवं जैन शिक्षा दोनों के केंद्र के रूप में किया था।

2. महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय- जैन शिक्षा व्यवस्था में महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय की स्थापना पर बल नहीं दिया गया था, किंतु बौद्ध शिक्षा में इनकी स्थापना पर विशेष बल दिया गया। चूँकि बौद्ध धर्म एक विश्व धर्म था, इसलिए बौद्ध शिक्षा केंद्र का विश्वविद्यालय के रूप में विकसित होना बहुत आसान हो गया।

- **महत्वपूर्ण बौद्ध शिक्षण संस्थान**-

1. नालंदा विश्वविद्यालय- इस विश्वविद्यालय की स्थापना गुप्त काल में हुई थी तथा इसके विकास में एक गुप्त शासक कुमारगुप्त प्रथम का विशेष योगदान माना जाता है। इसने शीघ्र ही एक विश्वविद्यालय का रूप ले लिया। यहाँ चीन एवं दक्षिण पूर्व एशिया से विद्वान अध्ययन के लिए आते थे। यह उच्च बौद्ध शिक्षा केंद्र था। एक चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी यहाँ शिक्षा पायी थी। उसने अपने विवरण में इस विश्वविद्यालय में 10000 छात्रों के पढ़ने का जिक्र किया है, वहीं एक अन्य चीनी यात्री इत्सिंग ने यहाँ 3000 छात्रों के द्वारा शिक्षा प्राप्त करने की बात की है।

2. वल्लभी- यह गुजरात में 7वीं सदी में बौद्ध शिक्षा केंद्र के रूप में विकसित हुआ। इसके विकास में वल्लभी के मैत्रक शासकों का योगदान रहा। इसने भी एक विश्वविद्यालय का दर्जा प्राप्त कर लिया क्योंकि भारत से बाहर के विद्वान भी यहाँ शिक्षा प्राप्त करने के लिए आते थे। 8वीं सदी में अरब आक्रमण के कारण इस शिक्षण संस्थान का पतन आरम्भ हो गया था, किंतु आगे मैत्रक शासकों के उत्तराधिकारियों ने इसे पुनः स्थापित किया।

3. विक्रमशिला- वर्तमान में बिहार के भागलपुर क्षेत्र में यह विश्वविद्यालय स्थापित किया गया था। यह भी महत्वपूर्ण बौद्ध शिक्षा केंद्र के रूप में विकसित हुआ। इसका संस्थापक पाल वंश का संस्थापक धर्मपाल था। 9वीं सदी में यह संस्था स्थापित हुई और आगामी लगभग 4 शताब्दियों तक चलती रही। इसने भी विश्वविद्यालय का दर्जा प्राप्त किया।

4. काँचीपुरम्- दक्षिण भारत में पल्लव शासकों के अधीन बौद्ध शिक्षा के रूप में काँचीपुरम् का विकास हुआ। फिर आगे इस पर ब्राह्मण शिक्षा प्रणाली का भी प्रभाव देखा गया। ह्वेनसांग तथा दिङ्नाग जैसे विद्वान भी काँचीपुरम् शिक्षा-केंद्र से जुड़े हुए थे।

- **पुस्तकालयों का निर्माण**- जैनियों ने महाविद्यालय अथवा विश्वविद्यालय की स्थापना करने के बजाय पुस्तकालयों के

निर्माण पर बल दिया। वस्तुतः शिक्षा दान को महादान की संज्ञा ग्रंथों में दी गयी है। इसके तहत निम्नलिखित बातें शामिल की गई– स्वयं पढ़ना, दूसरों को पढ़ने के लिए उत्साहित करना, स्वयं लिखना तथा दूसरों को लिखने के लिए उत्साहित करना।

प्रश्न– तक्षशिला विश्वविद्यालय, विश्व के प्राचीनतम विश्वविद्यालयों में एक था जिसके साथ विभिन्न शिक्षण विषयों (डिसिप्लिनस) के अनेक विख्यात विद्वान व्यक्तित्व सम्बंधित थे। उसकी रणनीतिक अवस्थिति के कारण उसकी कृति फैली। लेकिन नालंदा के विपरीत, आधुनिक अभिप्राय में उसे विश्वविद्यालय नहीं समझा जाता। चर्चा कीजिए। (UPSC-2014)

उत्तर– भारत में प्राचीनतम शिक्षा केंद्र तक्षशिला रहा था, किंतु सर्वाधिक प्रसिद्धि नालंदा को मिली। परीक्षण करने पर इसका महत्वपूर्ण कारण नजर आता है बौद्ध शिक्षा के महत्वपूर्ण केंद्र के रूप में इसका विकास होना। चूँकि बौद्ध धर्म एक विश्व धर्म रहा था, इसलिए नालंदा एक महत्वपूर्ण विश्वविद्यालय का दर्जा पा सका।

नालंदा के विपरीत तक्षशिला वास्तविक संदर्भ में विश्वविद्यालय का दर्जा नहीं प्राप्त कर सका था, जबकि यह ब्राह्मण शिक्षा का महत्वपूर्ण केंद्र था। यहाँ दर्शन, व्याकरण, चिकित्सा तथा अन्य विषयों की शिक्षा दी जाती रही थी। प्रमुख चिकित्साशास्त्री जीवक, महत्वपूर्ण वैयाकरण तथा वर्तिका के लेखक कात्यायन एवं महत्वपूर्ण कूटनीतिज्ञ, चाणक्य, इस महाविद्यालय से सम्बद्ध रहे थे। फिर यह एक महत्वपूर्ण सामरिक केंद्र पर अवस्थित था क्योंकि सिकंदर के आक्रमण के विरूद्ध जनमत निर्माण करने में भी संभवतः इस महाविद्यालय की भूमिका रही थी। बावजूद इसके, यह भारत के बाहर के विद्वानों और शोधकर्त्ताओं को आकर्षित नहीं कर सका। वहीं दूसरी तरफ नालंदा में पूर्वी एशिया से दक्षिण-पूर्वी एशिया तक बड़ी संख्या में विद्वान एवं शोधकर्त्ता आकर्षित हुए। बौद्ध धर्म की ओर आकर्षण ने स्वाभाविक रूप में उन्हें नालंदा की ओर आकर्षित किया था। इसके अतिरिक्त, दोनों के बीच अंतर का एक दूसरा बिंदु यह था कि नालंदा विश्वविद्यालय में एक अनुशासित एवं स्पष्ट पाठ्यक्रम लागू किया गया था, जबकि तक्षशिला महाविद्यालय में कोई स्पष्ट पाठ्यक्रम लागू नहीं किया जाता था। फिर छात्र भी विभिन्न शिक्षकों के बीच बंटे होते थे। नालंदा के महत्व को देखते हुए हाल में भारतीय सरकार ने कुछ अन्य देशों के साथ मिलकर इस विश्वविद्यालय को पुनर्जीवित करने तथा सॉफ्ट पावर (Soft power) के रूप में उसका उपयोग करने का निर्णय लिया है।

■■■